Drishtikon

Certificate of Publication

is awarded to

प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

for the paper titled

भक्ति आन्दोलन एवम् समरसता

Published in *Drishtikon* Journal Vol-11, Issue-06 Year 2019 ISSN: 0975-119X
International Refereed and Indexed Journal for Research Publication
With Impact Factor 5.1 UGC Care Listed

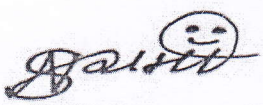

S.N. Sharma
Editor-in-Chief
editor@hindijournals.org

UGC
University Grants Commission

EDUINDEX

Drishtikon *(Bimonthly Hindi Journal)*

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

भक्ति आन्दोलन एवम् समरसता

प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी[1], अभिषेक चारण[2]

[1]निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जैन विश्व भारती संस्थान, (मान्य विश्वविद्यालय), लाडनूं-341306 (राजस्थान)

[2]सहायक आचार्य (हिन्दी), जैन विश्व भारती संस्थान, (मान्य विश्वविद्यालय), लाडनूं-341306 (राजस्थान)

आलेख सार

भक्ति आन्दोलन जिन परिस्थितियों में आरम्भ हुआ उसका प्रथम उद्देश्य तमाम तरह के विभेदों को मिटाकर समता मूलक समाज की रचना करना था। तत्कालीन समाज छुआछूत और ऊँच नीच जैसी तमाम बुराइयों से आक्रान्त था इन बुराइयों से मुक्ति के लिए एक ऐसे आन्दोलन की जरूरत थी जो सामुदायिक संरचना में समूल परिवर्तन का पुरोधा बन सके।

भक्ति आन्दोलन तमाम के तमाम सुधारवादी सन्तों ने एक स्वर से ना केवल खोखले कर्म-काण्डों और धर्म की आड़ में जारी पाखण्डों का विरोध किया अपितु जाति-पांति वर्ग भेद और वर्ण भेद की मानसिकता में जकड़े समाज को सौहार्द और सहिष्णुता से परिपूर्ण एक नवीन जीवन दृष्टि दी। एक ऐसी जीवन दृष्टि जिसमें म्लैच्छ और विधर्मियों तक के लिए भी कहीं कोई घृणा नहीं-नफरत नहीं थी।

कुल मिलाकर यह समग्र आन्दोलन ना केवल भारतीय धर्म और समाज बल्कि समग्र सृष्टि के लिए नया विहान लेकर आया। धर्म के नाम पर चली आ रही बरसों पुरानी भ्रान्त धारणाओं के स्थान पर युगानुकूल और तर्क सम्मत अवधारणाओं की स्थापना इस पूरे आन्दोलन की महानतम उपलब्धियों में से है।

Copyright ©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

मुख्य शब्दावली

1.सूफी सम्प्रदाय- मुस्लिम संत कवियों द्वारा प्रवर्तित एक सम्प्रदाय जिसके अनुयायी सूफ (ऊन) से बने कपड़े पहनते थे।

2.भक्ति आन्दोलन- 1375 से 1700 तक के काल खण्ड में कतिपय सन्त कवियों द्वारा प्रवर्तित एक पूर्णतया मानवीय और व्यापक आन्दोलन।

3.सगुण भक्तिधारा- यह भक्ति धारा ईश्वर के साकार रूप की उपासक थी।

4.निर्गुण भक्तिधारा-यह ईश्वर के निराकार स्वरूप की आराधक थी।

5.एकेश्वरवाद- एक ईश्वर की उपासना करने वाली विचारधारा।

प्रस्तावना

भक्ति आन्दोलन का काल विद्वानों ने 1375 से 1700 विक्रमी सम्वत् तक माना है। इस काल खण्ड में भक्त कवियों ने कर्म, ज्ञान और भक्ति की त्रिवेणी बहाते हुए जो अमर काव्य रचनाएं कीं वे हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। कर्म, ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य ही वस्तुतः धर्म का प्राण तत्व है और इन्हीं तीनों की मौजूदगी में ही धर्म गतिशील रहता है। कर्म के बिना ज्ञान निरा वाग्जाल है तो ज्ञान के बिना भक्ति अँधेरे में तीर चलाने का उपक्रम भर होकर रह जाती है वहीं भक्ति के बिना कर्म और ज्ञान दोनों ही अप्रासंगिक हो जाते हैं। कुल मिलाकर इन तीनों का सामंजस्य ही हमें एक सन्तुलित जीवन दर्शन की ओर प्रवत्त करता है जो प्राणि मात्र के लिए श्रेयष्कर है।

इस आन्दोलन के आधार स्तम्भ कहे जाने वाले विभिन्न सम्प्रदायों में श्री संप्रदाय, ब्रम्ह संप्रदाय, रूद्र संप्रदाय और सनकादि संप्रदाय प्रमुख है। इन्हीं के समानन्तर एक अलग तरह का सम्प्रदाय भी विकसित हुआ जिसे सूफी सम्प्रदाय के नाम से जाना गया। चूंकि भक्ति आन्दोलन पूर्णतया मानवीय और व्यापक आन्दोलन था इसलिए इसमें हिन्दू-मुस्लिम या तथाकथित ऊँच-नीच या बड़े छोटे की संकुचित मानसिकता के लिए कहीं कोई जगह नहीं थी। सवर्ण- अछूत जैसी धारणाओं को खंडित करना तो इस आन्दोलन का जैसे मुख्य उद्देश्य ही था तभी तो गुरू नानक सरीखे सन्तों ने लिखा -

Copyright©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

एक नूर तें सब जग उपज्या,
कौन भले, कुण मन्दे??

इसी प्रकार कबीर जैसे क्रान्तिकारी विचारकों ने तत्कालीन सामाजिक संरचना में दीमक की तरह पैठ चुके, कर्मकाण्डों और अर्धशून्य बाहरी विधि विधानों, तीर्थाटन, पर्व, स्नान, और तमाम दिखावों को निरर्थक बताते हुए धर्म के मर्म को समझने का आव्हान किया।

कालदर्शी भक्त कवि जनता के हनदय को संभालने और लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति को जगाने लगे। क्रमशः भक्ति का प्रवाह ऐसा विकसित और प्रबल होता गया कि उसकी लपेट में ना केवल हिन्दू जनता बल्कि देश में बसने वाले सहनदय मुसलमान भी आ गये। प्रेम स्वरूप ईश्वर को सामने लाकर भक्त कवियों ने हिन्दूओं और मुसलमानों दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया और भेदभाव के दृश्यों को हटाकर पीछे कर दिया।

(हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ सं. 62) -

वस्तुतः भक्ति आन्दोलन का मूल उद्देश्य ही तमाम तरह के भेदभावों और ऊँच नीच को मिटाकर एक समता मूलक समाज की रचना करना था जिसमें जाति, वर्ण, वर्ग और धर्म के भेद से ऊपर उठकर मनुष्य मात्र को एक नयी अर्थवत्ता और पहचान दी जा सके। इस दृष्टि से नामदेव और रामानन्द जैसे सन्तों का अवदान उल्लेखनीय था। इसके अलावा निर्गुण मत के प्रवर्तक कबीर जैसे सुधारक भी अपने पूरे जीवनकाल में एक ओर जहां-'दुइ जगदीश कहाँ ते आये' की टेर के साथ एकेश्वरवाद की अवधारणा को पुष्ट करते रहे वहीं नानक देव जी जैसे महान पन्थ प्रवर्तकों ने भी प्रकारान्तर से इसी मत की पुष्टि करते हुए कहा -

हिन्दू कहूं तो मारिये, मुसलमान भी नायं।
पांच तत्व का पूतला नानक मेरा नाम।।

यह सामान्य भक्ति मार्ग एकेश्वरवाद का एक निश्चित स्वरूप लेकर खड़ा हुआ, जो कभी ब्रम्हवाद की ओर ढ़लता था और कभी पैगम्बरी खुदावाद की ओर। यह 'निर्गुण पंथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी ओर ले जाने वाली सबसे पहली प्रवत्ति जो लक्षित हुई वह ऊँच नीच और जाति पांति के भाव का त्याग और ईश्वर की भक्ति के लिए मनुष्य मात्र के समान

Copyright ©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

अधिकार का स्वीकार था। इस भाव का सूत्रपात महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में नामदेव और रामानन्द जी द्वारा हुआ।

(हिन्दी साहित्य का इतिहासः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-64)

भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तकों में से प्रमुख कबीर और नामदेव ने एकेश्वर वाद के अनुमोदन के अलावा कदम कदम पर समता मूलक समाज की परिकल्पना को भी मूर्त रूप देने का प्रयास किया। यहां कुछ उदाहरण ही इस बात को पुष्ट करने के लिए काफी हैः-

एकै पाथर कीजै पाऊ। दूजे पाथर धरिए पाऊ।
जै इहु देऊ उहू भी देवा। नामदेव कहि हरि की सेवा।।

- नामदेव

पत्थर पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार।
तां तै या चाकी भली, पीस खाय संसार।।

- कबीरदास

कहा करउ जाती, कहा करउ पाती।
राम का नाम जपऊ दिन राती।।

- नामदेव

जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवारि का पड़ा रहन द्यौ म्यान।।

- कबीरदास

हिन्दू अन्धा तुरकू काणा, दोहां ते गिआनी सिआणा
हिन्दू पूजै देहरा मुसलमान मसीत।
नामें सोई सेविया जह देहरा ना मसीत।

- नामदेव

कांकर पाथर जोरिकै मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।

- कबीरदास

Copyright©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

- (सन्दर्भ-हिन्दी को मराठी सन्तों की देन- डॉ. विनय मोहन शर्मा)

सामाजिक दृष्टि से इन सन्तों की विचारधारा का मूल्यांकन करने पर यह भली भांति स्पष्ट होता है कि उन्होंने समाज को एक नवीन क्रान्तिकारी एवम् प्रगतिशील दृष्टिकोण दिया, वेद-शास्त्र एवम् पुराने ग्रन्थ ही सब कुछ नहीं है तथा सत्य की कसौटी शास्त्र नहीं अपितु आत्मानुभूति है-इस सत्य की घोषणा करते हुए उन्होनें समाज के सामने ऐसा स्वतन्त्र दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिसे आज की शब्दावली में 'वैज्ञानिक' एवम् 'प्रगतिशील' कहा जा सकता है। यही वह दृष्टिकोण है जिसके बल पर कोई भी समाज परम्परागत रूढिवादिता एवम् वर्ग विशेष की मानसिक प्रभुता से मुक्ति पा सकता है। दूसरे, उन्होनें प्रत्येक व्यक्ति की, फिर चाहे वह शुद्र हो या ब्राम्हण, हिन्दू हो या मुसलमान, गृहस्थ हो या साधक, मोची, धुनिया अथवा जुलाहा हो या लखपति व्यापारी हो-सभी की, समानता की घोषणा करके भारतीय साम्यवाद की पुनः प्रतिष्ठा की।

(हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृष्ठ सं. 172)

रामानन्द, रैदास, नानक, कबीर, दादू दयाल, सुन्दर दास, मलूकदास, रज्जब दास, पल्टू साहब, सहजो बाई, दया बाई और नानकदेव आदि महान सन्तों ने समग्र मानवता के लिए सामाजिक समरसता से भरपूर एक अलग तरह की दृष्टि दी जो उस युग की एक बड़ी जरूरत थी। वर्णाश्रम व्यवस्था में बँटे हिन्दू समाज में निम्न वर्ग की दयनीय दशा में सुधार के लिए इन दयालु सन्तों ने जो अलख जगायी उसी का परिणाम है कि शनै-शनै समाज का दलित तबका भी स्वाभिमान के साथ जीने लगा। भक्ति आन्दोलन के दौरान राजस्थान में भी सामाजिक समरसता का इतिहास रचा गया जिसके प्रणेता "पञ्च पीरों" में से एक और पूरे पश्चिमी भारत में विष्णु के अवतार के रूप में पूजित बाबा रामदेव जी थे-वैसे पांच पीरों के रूप में विख्यात रामदेवजी, हरबू जी सांखला, पाबू जी राठौड़, मेहाजी मांगलिया और गोगाजी चैहान ने भी समतामूलक समाज की रचना में कम योगदान नहीं दिया था।

संयोस से ये पाँचों ही पीर सद्ग्रहस्थ थे सामाजिक ढाँचे के शिखर पर स्थित क्षत्रीय वर्ण से थे। इनमें से रामदेव जी तंवर, गोगाजी चैहान, मेहाजी मांगलिया, हरबूजी सांखला और पाबू जी राठौड़ गौत्र के राजपूत थे। इसकी साक्षी के रूप में ये दोहा प्रचलित है:-

पाबू, हरबू, रामदे, मांगलिया मेहा।

Copyright©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

पांचू पीर पधारज्यो सिद्ध गोगा जेहा।।

इतिहास साक्षी है कि रामदेव जी ने उस समय के समाज में दलित समझे जाने वाले मेघवालों के साथ उठने बैठने की वजह से सामाजिक बहिष्कार तक झेला वहीं पाबू जी राठौड़ ने थोरी (नायक) जाति के योद्धाओं को अपनी सेना में उच्च पदों पर आसीन कर सम्मानित किया। पाबूजी के सेना नायक चांदा और डामा नायक जाति से थे जिनकी गिनती अछूतों में होती थी।

इसी प्रकार गोगाजी चैहान ने भी अपनी सेना नायक, थोरी और मेघवाल समाज के योद्धाओं को शामिल कर एक नये सामाजिक समीकरण की रचना की जिसमें ऊँच नीच और छुआछुत के लिए कहीं कोई स्थान नहीं था।

इन्हीं के समान्तर मरू मन्दाकिनी के विरूद से विभूषित भक्तिमति मीरां बाई और गागरोन के पूर्व शासक सन्त पीपाजी के नाम भी आते हैं जिन्होनें अपनी जाति वर्ण को छोड़कर एक अलग समुदाय बनाया जिसमें ऊँचनी और बड़े-छोटे का कोई भेद नहीं था।

समरसता का यह भाव बोध इतना दृढ़ था कि इससे ना केवल हिन्दू समाज में ऊँच नीच का फर्क मिटा बल्कि जिन मुसलमानों को म्लैच्छ और विधर्मी कहकर तिरस्कृत किया जाता रहा था उन्हें भी एकाकार कर एक स्वस्थ और सहिष्णु समाज की रचना का प्रारूप आकार लेने लगा। भक्ति आन्दोलन के दौरान विभिन्न सन्तों-कवियों के पदों और वाणियों का समवेत स्वर समता मूलक समाज की आधार भूमि बनकर उभरा।

निष्कर्ष

भक्त की एक सुन्दरसी परिभाषा कहीं पढने में आयी की भक्त वो है जो विभक्त नहीं है अर्थात जो ईश्वर की बनाई हुई इस सम्पूर्ण सृष्टि के साथ एकात्म है एकाकार है वो ही भक्त है। दूसरे शब्दों में कहें तो नवधा भक्ति में वर्णित भक्ति के तमाम रूपाकारों की सामूहिक विशेषता 'आत्मवत् सर्व-भूतेषू' है।

भक्ति हमें समर्पण सिखाती है, सौहार्द और सहिष्णुता सिखाती है और सबसे बड़ी बात ये कि भक्ति में अहंकार का विसर्जन होता है और जहां अहंकार विसर्जित हो जाता है वहीं से समता और समानता शुरू होती है क्यों कि ऊँच-नीच और छोटे बड़े का भेद अहंकार की वजह से ही

Copyright©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

होता है। इस पूरे काल खण्ड में ऐसे अनेक सन्तों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होनें अपनी शिक्षाओं में प्राणि मात्र में एक ही ईश्वर का प्रतिरूप बताया तथा समस्त संसार को उसी एक परम ज्योति का अंश बताया-समस्त जड़ चेतन में उसी परम सन्ता की व्याप्ति का यह अमर सन्देश ही प्रकारान्तर से सामाजिक समरसता का आधार बना।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, डॉ. रामकुमार (2010), "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास"-लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद।
2. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र (1929), "हिन्दी साहित्य का इतिहास"-नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
3. त्रिपाठी, आचार्य विश्वनाथ (2012), "हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास"-Orient Blackswan Pvt. Ltd.
4. चतुर्वेदी, रामस्वरुप (1986), "हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास"-लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद।
5. गुप्त, डॉ. गणपतिचन्द्र (दसवां संस्करण-2013), "हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास"-लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद।
6. डॉ. नगेन्द्र (1973-2014), "हिन्दी साहित्य का इतिहास" (सम्पादित)-मयूर पेपरबेक्स, जयपुर।
7. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद (2015), "हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास"-राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
8. मिश्र, आचार्य विश्वनाथप्रसाद (2012), "हिन्दी साहित्य का अतीत"-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. शर्मा, डॉ. नलिन विलोचन (1960-97), "हिन्दी साहित्य का दर्शन"-बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना।
10. सिंह, डॉ. बच्चन (1996), "हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास"-राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
11. (1957-84), "हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास"-नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

Copyright©authors